International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 06-08

गीताः विषाद से क्रान्ति और क्रान्ति से सृजन

[1] प्रो॰ संगीता जैन, [2] प्रो॰ लक्ष्मी शर्मा

[1] रीडर, एडवांस्ड इन्स्टीट्यूट ऑफ ऐजुकेषन, पलवल, हरियाणा, भारत।
[2] प्रघानाचार्या, एडवांस्ड इन्स्टीट्यूट ऑफ ऐजुकेषन, पलवल, हरियाणा, भारत।

सरांष
विषाद से क्रान्ति और क्रांति से सृजन सम्भव है। अर्जुन के विषाद से गीता का जन्म हुआ । महाभारत का सारा युद्ध अर्जुन के विषाद पर टिका है । धृतराष्ट्र और कौरवों की अनुचित कामनायें उनकी अनुचित वासनायों का परिणाम गीता है। अर्जुन का विषाद संताप से आत्मा–क्रान्ति की ओर ले जाता है। अपनो को मार कर कैसा सुख अर्जुन की बेचैनी के पीछे प्रामणिकता छिपी है। निष्काम कर्म और अखंड मन सृजनात्मक तक पहुंचाने का एक मार्ग है। फल, आकांक्षा रहित कर्म। अन्तःकरण की शुद्धि से विपेक्ष खो जाता है। अन्तःकरण शुद्ध हो तो विपेक्ष अपने आप अलग हो जाते है। संसार कर्मक्षेत्र है जहां सदा महाभारत चलता रहता है। जिस प्राणी की होनहार बिगड़ चुकी हो – उस जीव को कोई भी नही समझा सकता । जैसे धृतराष्ट और कौरव। अर्जुन विचलित है – कृष्ण अर्जुन को विवेक से काम लेने की प्रेरणा देते है। अपने विचारों को सीढी बनाओ और विजयी भव। यह बुद्धिजीवियों का संकल्पवानों का युग है। अपने अंहकार को परमार्थ की ओर मोडना है तभी मनुष्य अपने आप को महा विषाद से बचाकर सृजनात्मकता का ओर ले जा सकेगा।

मूल शब्द : गीताः, महाभारत।

प्रस्तावना
अर्जुन का विषाद गंगोत्री बना और उस से कल–कल करती गंगा निकली और आत्म परिवर्तनकारी बनी। अर्जुन हम सब का प्रतीक है। विषाद से हम सब निकलने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु निकलने के स्थान पर उसमें और अधिक उलझते जाते हैं। उस घड़ी में हमें किसी सहायक की, अरिहंत की, किसी अवतारी पुरूष की आवश्यकता होती है जो हमें उस विषाद से मुक्ति दिला सके, उससे निकाल सके, किन्तु हम इतने भाग्यशाली नहीं कि हमें अरिहंतों का, अवतारी पुरूषों का सानिध्य मिले। उनका योग निर्मित नहीं होता, संवाद–विषाद में डूबे हुए को ऊपर उठाये, तब ही उसकी सार्थकता है। विषाद अगर अटक जाये तो विनाशकारी बन जाता है और यदि वह गंगा के समान सागर की ओर बहता जाये तो आत्म–परिवर्तनकारी बनता है।

भगवान महावीर, बुद्ध का विषाद उन्हें अपने अंतिम गंतव्य तक ले गया। गीता–कृष्ण संवाद इसी भूमिका का संवाद है। गीता बड़ी अनमोल है। इसमें हर तरह के फूल, सुगंध, रस, संगीत समाहित है। वह चाहे रागी हो, विरागी हा, सन्यासी हो या गहस्थ हो। किसी पंथ विशेष या सम्प्रदाय विशेष से कुछ लेना–देना नहीं यह एक सार्वभौमिक शाश्वत वाणी है। भारतीय मनीषा के मानसरोवर में खिला हुआ एक नील कमल है। शताब्दियॉ बीत जाने पर भी इसकी सुगंध इसकी सार्थकता कम नहीं हुई है। अंधे धृतराष्ट्र और उनके पुत्र कौरवों की अंधी अनुचित कामनाओं का, अनुचित जिज्ञासा का, वासना का परिणाम गीता है। धृतराष्ट्र कुरूक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कह कर संबोधित करते हैं। क्या धर्मक्षेत्र में युद्ध संभव है?

यद्यपि धर्म के क्षेत्रों में तो युद्ध होते ही रहते हैं। जहॉ युद्ध हो, रक्तपात हो उसे आप धर्मक्षेत्र कैसे कह पायेंगे, वह तो अधर्मक्षेत्र ही कहलायेगा। आज भी धर्म के नाम पर मार–काट और युद्ध चल रहे हैं। ये माओवादी, ये आतंकवादी सब वास्तव में कौरव ही तो हैं जो मानवता का रक्त बहा रहे हैं। मनुष्य की गहरे में जो विनाश की आकांक्षा है, ये पशु प्रवृत्ति है वह धर्मक्षेत्र में भी कम नहीं होती। कृष्ण जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के होते हुए भी कुरूक्षेत्र में युद्ध हुआ। ये उदाहरण है, वास्तव में जब धर्म का सहारा मिल जाता है तो लड़ना आसान हो जाता है, लड़ना न्यायसंगत हो जाता है। गीता अंधे धृतराष्ट्र की जिज्ञासा का परिणाम ही तो है।

ऐसा नहीं है कि आज बुरे लोगों की अधिकता हो गई है, बुरे लोग, विनाशकारी प्रवृत्ति के लोग पहले भी थे और आज भी हैं। अच्छे उच्च विचारों के लोग पहले भी थे और आज भी हैं। अंतर केवल इतना है कि आज अधिकतर मनुष्य हीनता की ग्रन्थि से पीड़ित हैं। आज अच्छे से अच्छा आदमी भी आश्वस्त नहीं और यही एक कारण है कि उसकी अच्छाई टिक नहीं पाती। जबकि बुरा करने वाला आश्वस्त है किन्तु इस बुराई को बतला जा सकता है।

आकांक्षाऐं असीम होती हैं। त्रिलोक की समस्त सम्पदा की प्राप्ति भी मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर सकती। चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक वह जो कहते हैं कि मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा। दूसरा व्यक्ति कहता है कि मेरा से मेरा, तेरा सो तेरा। तीसरा व्यक्ति कहता है कि तेरा सो तेरा और मेरा भी तेरा तथा चौथा व्यक्ति कहता है कि न मेरा, न तेरा चिड़िया रैन बसेरा। अहो दुर्योधन का अभिमान कि पाण्डवों को में एक सुई की नोक के बरावर भी राज्य नहीं दूँगा। मेरा सो मेरा, पांडवों का भी मेरा।

महाभारत का सारा का सारा युद्ध अर्जुन पर टिका है। अर्जुन एक संवेदनशील, विचारशील व्यक्ति हैं। ये युद्ध के परिणामों से भली–भांति परिचित हैं और यही कारण है कि वह युद्ध नहीं चाहता। वह एक नए तल पर पहुॅच कर ही युद्ध के लिये तैयार हो सका।

अक्सर ऐसा होता है कि जीवन जैसा प्रारम्भ होता है, अंत वैसा नहीं होता। अंत सदा से ही अनिश्चित है, अनिर्मित है। जीवन तो एक अज्ञात यात्रा है। हम जैसा सोच–विचार कर चलते हैं, अंत अक्सर वैसा नहीं होता। हम भाग्य को निर्मित करना चाहते हैं किन्तु निष्पत्ति कुछ और ही होती है। अर्जुन तो युद्ध से भागना चाहते थे मगर भाग्य में कुछ और ही था। श्रीकृष्ण निमित्त बने, वह एक अज्ञात अदृश्य शक्ति के रूप में आये और सारा खेल बदल गया। जैसा प्रतीत होता था वह नहीं घटा और जो नहीं सोचा था वह

घटित हो गया। अज्ञात जब उतरता है तो उसकी भविष्यवाणी सम्भव नहीं।
जीवन अंकगणित नहीं जो बॅधे–बॅधाये नियमों के अनुसार चले। जिंदगी की रेल पटरियों पर नहीं दौड़ती वह तो गंगा की धारा की तरह बहती है।
कहा गया है '' मन प्रोपोसिस एंड गॉड डिस्पोसिस''।
पूरी गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि वह अपने आप को उस अज्ञात शक्ति को समर्पित कर दे जिन्हें वह अपना समझ रहा है, अपना सोच रहा है कि कैसे मारूॅ, वह तो अज्ञात के हाथों पहले ही मर चुके हैं, तुम तो केवल निमित्त मात्र हो, ऐसा होना तुम्हारे हाथों निश्चित है इस सब का उत्तरदायित्व तुम्हारा नहीं, तुम इस सब के लिये जिम्मेदार नहीं हो।
आयुकर्म किसी के साथ भेदभाव नहीं करता है। एकबार को चाण्डाल को करूणा आ सकती है परन्तु यमराज को करूणा नहीं, आयुकर्म को करूणा नहीं, जिस देश में, जिस काल में, जिस विधि में, जिसका जन्म–मरण होना है उसे इन्द्र और जैनेन्द्र भी नहीं रोक सकते।
मनुष्य जब अपने कर्ताभाव को त्याग कर, अपने अहंकार को छोड़कर, अपने को उस अदृश शक्ति को समर्पित करता है तो ईश्वर की इच्छा फलित होती है।
एक छोटी सी बड़ी प्रेरणादायक कहानी है कि एक नदी में बाढ़ आयी हुई थी, उस नदी में दो छोटे से तिनके बह रहे थे। एक अक्खड़ तिनका जो आढ़ा पड़ा था, नदी के बहाव को रोकने का प्रयत्न कर रहा था, पुरजोर शक्ति लगा रहा था उस नदी के बहाव को रोकने के लिये। नदी इस बात से बेफिकर थी और अपनी मस्ती में बही चली जा रही थी। यह छोटा सा तिनका व्यर्थ अपनी शक्ति का हनन कर रहा था, व्यर्थ लड़ रहा था।
यह लड़कर भी वहॉ पहुॅचेगा जहॉ इसे पहुॅचना है। व्यर्थ पीड़ झेल रहा है। यह जो लड़ने का और पहुॅचने का काल है, यह पीड़ा का, चिंता का काल बनेगा। दूसरा तिनका अपने को अदृश के हाथों छोड़ देता है। वह जिस ओर नदी बहे जा रही है, उसी के साथ बहे जा रहा है मगर विचारता है कि वह नही को बहने में सहायक है। नदी को सागर तक पहुॅचा ही दूॅगा और नदी इस सब से अनजान है। उसे तिनके की सहायता का कोई ज्ञान नहीं।
यद्यपि नदी को इन दोनों तिनकों से कुछ लेना–देना नहीं, उसे कुछ फर्क नहीं पड़ता मगर तिनकों को बहुत फर्क पड़ता है। वह तिनका जो नदी के साथ आनंद से, आराम से बह रहा है, वह अपनी मौज में है, आनंद ले रहा है, नाच रहा है, बेफिक्र है जबकि दूसरा तिनका नदी से व्यर्थ लडत्र रहा है, अपनी शक्ति को व्यर्थ गॅवा रहा है, दुखी है। उसका यह दुःसाहस उसके अंगो को तोड़ डालेगा, वह व्यर्थ कष्ट झेल रहा है, उसकी हार निश्चित है।
मनुष्य नियति के विरूद्ध, होनी के विरूद्ध, ईश्वर की इच्छा के विरूद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। हॉ उसे लड़ने की स्वतंत्रता है, लड़कर अपने को दुखी करने की, चिंतित करने की स्वतंत्रता उसे है।
''सात्रे'' का एक वचन है ''ह्यूमैनिटी इज़ कंडेम्ड टु बी फ्री'' मनुष्य स्वतंत्र होने को विवश है, कंडेम्ड हैं, निदित है।
मनुष्य अपनी स्वतंत्रता को दोनों प्रकार से उपयोग में ले सकता है। चाहे तो आड़े पड़े तिनके के समान व्यर्थ परिश्रम करे और अपने जीवन को नारकीय बना ले या उस तिनके की तरह अपने को उस अज्ञात ब्रह्म को समर्पित कर दे और अपने जीवन को आनन्दमय बना ले। यह जो तिनका नदी के बहाव को व्यर्थ रोकने का प्रयत्न कर रहा है इसकी हार निश्चित है, व्यर्थ अपनी शक्ति का ह्रास कर अपने को दुःखी बना रहा है। इसका विजयी होने का कोई उपाय नहीं। दूसरा तिनका जो सोच रहा है वह नदी के बहाने में सहायक है, वह निश्चित विजयी होगा, उसकी हार का कोई उपाय नहीं है। ईश्वर की इच्छा को जाना तो नहीं जा सकता, मगर उसके साथ हुआ जा सकता है। अपनी इच्छा को समाप्त होने पर ईश्वर की इच्छा ही शेष रह जाती है।
विचारणीय है कि वैज्ञानिकों के आविष्कार, उनकी खोज, उनके प्रयत्न इत्यादि उनकी अपनी बुद्धि के फलस्वरूप हैं, यह सब बाहर से प्रतीत होता है अन्यथा वास्तविकता कुछ और ही है। वैज्ञानिक खोज में, आविष्कारों में अदृश शक्ति, ईश्वरीय शक्ति कार्य रूप हैं। जो अपना काम, अपना सहयोग देती हैं।
मैडम क्यूरी को ही लो। एक प्रश्न को अथक प्रयत्न के पश्चात भी हल नहीं कर पायीं। प्रयत्न कर–कर थक गयी–परेशान हो गईं मगर प्रश्न हल नहीं हुआ। अंत में एक रात अपने प्रश्न को अधूरा छोड़ कर सोने चली गईं, विचार आया कि इस प्रश्न को छोड़ना ही पड़ेगा। उत्तर समझ में नहीं आ रहा, कोई चारा नहीं बचा था।
प्रातः जब सोकर उठीं तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। जिस प्रश्न को अधूरा छोड़कर सोईं थीं वह हल हो चुका था। कमरे को अच्छी तरह से देखा, परखा कि कोई कमरे में तो नहीं आया था और पाया कि सब खिड़की दरवाजे यथा बंद हैं, जैसा सोते समय बंद कर सोई थी। फिर कौन आया और प्रश्न को हल कर गया।
मैडम क्यूरी नोबल प्राइज विजेता थीं। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था कि यदि मैं इस प्रश्न को हल नहीं कर पायी तो किसने इसको हल किया। क्या कोई अदृश शक्ति, कोई ईश्वरीय शक्ति इसको हल कर गई। बड़ी दुविधा में थी फिर देखा तो अक्षर तो उसी के हैं, हैण्ड राइटिंग तो उसी की है। प्रश्न तो उसके ही द्वारा हल हुआ है। सोचते–सोचते ख्याल आया कि रात स्वप्न में, नींद में वह उठी थी अपनी स्टडी टेबल पर आयी और प्रश्न को हल कर नींद में वापस सोने चली गयी।
कारण स्पष्ट था कि जब तक मैडम क्यूरी होने का अभिमान था तो वह व्यक्तिगत मैडम क्यूरी थी और जैसे ही रात सोने के समय इस अहंकार का, इस अभिमान को विसर्जन हुआ, बूॅद सागर में समा गई, सागर के साथ एक हो गई। जो प्रश्न चेतन मन से हली नहीं कर पायी उसे अचेतन मन ने ही हल कर दिया। हमारा अचेतन मन गहरे में ईश्वर से जुड़ा हुआ है, उसी क्षमता अनन्त है, एक ही शर्त है–''मैं'' का विसर्जन, अहंकार का त्याग, कर्ताभाव का छोड़ना।
आर्किमिडीज को ही ले लो– सम्राट का आदेश कि उसके स्वर्ण हार की शुद्धता का पता, उस हार को क्षति पहुॅचाये बिना लगायें। हार को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुॅचनी चाहिए।
आर्किमिडीज का हर प्रयत्न व्यर्थ– हार, थक–कर परेशान अपने स्नानागृह में पानी के टब में नग्न, शांत मन से पड़ा था कि अचानक चिल्लाता हुआ नग्न ही दौड़ पड़ा ''इरेका–इरेका'' मिल गया–मिल गया, हल मिल गया। लोगों ने उसे पकड़ा और कहा कि क्या हो गया क्या नंगे ही राजा से मिलने जाओगे। तब उसे ध्यान आया कि वह तो नंगा ही सड़क पर दौड़ा जा रहा था। यह आदमी जो नग्न सड़क पर दौड़ा जा रहा था वह आर्किमिडीज नहीं था। वह प्रश्न जो हल हुआ था वह व्यक्ति की चेतना ने नहीं, निव्यक्ति चेतना में हल हुआ था। जब आर्किमिडीज – आर्किमिडीज नहीं रहा, ब्रह्म के साथ एक हो गया तो प्रश्न हल हो गया।
विश्व के सुप्रसिद्ध, विख्यात वैज्ञानिकों का कहना है कि जो भी हम से जाना वह हमने नहीं जाना। निरंतर ही ऐसा घटित हुआ कि जब भी हमने कुछ जाना, उस समय हम–हम नहीं थे, बस जानना घटित हो गया। यही सब उपनिषद के ऋषियों ने कहा, यही वेद के ऋषियों ने कहा और यही मोहम्मद, यही जीसस कहते हैं।
मेबल कोलिन्स का कथन कि जो शब्द उसने अपनी पुस्तक– लाइट ऑन द् पथ में लिखे हैं, वह उसने नहीं लिखे वरन् ध्यान की किसी गहराई में उसने देखे और लिख दिये।
कुरान भी तो इसी तरह अवतरित हुआ। मोहम्मद तो एक दम अनपढ़ थे, लिखना–पढ़ना नहीं जानते थे किन्तु भीतर की आवाज

कि इन शब्दों को पढ़ो, इन्हें पढ़ने के लिये बाहरी ज्ञान की आवश्यकता नहीं। मोहम्मद परेशान, बुखार तक हो गया, अपनी पत्नी तक को भी कुछ नहीं बतलाया। तीन दिन तक वही शब्द दिखते रहे और आखिर मोहम्मद उन्हें पहचानने लगे और कुरान अवतरित हो गया।

रविन्द्रनाथ से किसी ने पूछा कि आप ने इतने गीत लिखे– कोई छः हजार, आप कैसे लिख पाये। रविन्द्रनाथ ने कहा कि यह मत पूछो। जब तक मैं– मैं रहता हूँ तब तक गीत उतरते ही नहीं, और जब में मैं नहीं रहता हूँ, मैं खो जाता है तो गीत बनने लगते हैं, उतरने लगते हैं।

यही सब तो श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता में समझा रहे हैं कि कर्ता भाव को छोड़, अपना कर्म करो।

गीता के प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक 'धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे मामकाः पंडवाश्चेव' महाभारत की भूमिका है और अंतिम अठारहवॉ अध्याय उपसंहार। संजय से धृतराष्ट्र पूछता है कि हे संजय कुरूक्षेत्र जो धर्मक्षेत्र है उसमें युद्ध करने हेतु इकट्ठे हुये उसके पुत्र और पांडव पुत्रों ने क्या किया।

निश्चित ही संसार एक कर्मक्षेत्र है। यहॉ कर्म द्वारा ही धर्म की प्राप्ति होती है किन्तु जब अहंकार युक्त चेतना मेरे और तेरे (मामकाः पंडवाश्चेव) में बात जाती है तब द्वंद, संघर्ष और महाभारत का जन्म होता है। मेरे और तेरे से ग्रस्त मन सत्य को नहीं देख पाता। ऐसी दृष्टि अंधी ही कही जा सकती है। और धृतराष्ट्र अंधा है, उसकी विवेक की ऑखें बन्द हैं। जिस जीव की होनहार बिगड़ चुकी हो, उस जीव को कोई भी नहीं समझा सकता, उसे सिद्धान्त भी गलत नजर आते हैं।

महाभारत इस अंधदृष्टि का ही परिणाम है। गीता अहंकार–ग्रस्त, अंध–दृष्टि से मोक्ष मार्ग तक जाने का एक मार्ग है। गीता अपने आप में अनूठी है, यह युद्ध क्षेत्र में लिखी गई, युद्ध क्षेत्र में जन्मी है।

युद्ध घर का हो या बाजार का, दुकान का हो या ऑफिस का, अपनों के बीच हो या गैरों के बीच, हर पल चल रहा है। अर्जुन से जो लड़ने को खड़े हैं वह सब अपने ही तो हैं– चचेरे भाई, मित्र हैं, सगे संबंधी हैं एवं गुरूजन हैं।

अर्जुन कह रहा है कि कौरव–दुर्योधन विचारहीन हैं, हम भी विचारहीन होकर यदि युद्ध करेंगे तो क्या वह शुभ होगा। माना दुर्योधरन गलत है, लेकिन गलत के साथ हम भी गलत हो जायें तो ठीक क्या होगा? युद्ध दुश्मनों के बीच नहीं अपनों के बीच हो रहा है, युद्ध में अपनों को ही मारोगे और अपनों से ही मरेंगे। अर्जुन विचलित है कि अपनों को मारकर क्या मिलेगा? कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि तू परिस्थितियों से मुँह मत मोड़, परिस्थति से भाग मत, सचेतन बन, विवेक से काम ले। जो मनुष्य समस्याओं से घबरा कर भागते हैं, वो समस्याओं से छोटे पड़ जाते हैं। जीवन ने एक अवसर दिया है अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह कर, उठ समस्याओं को सीढ़ी बना, ऊँचाइयों को छू, जीवन प्रतिपल एक चुनौती है जो इसे स्वीकार कर लेता है वह विजयी है और जो इसे स्वीकार नहीं करते वह जीते जी मर जाते हैं।

बर्नाड शॉ ने कहा है कि लोग मर तो बहुत पहले जाते हैं, मगर दफनाया बहुत बाद में जाता है। जिस समय मनुष्य चुनौतियों को नकारता है, उसकी मौत उसी क्षण हो जाती है। जीवन चुनौतियों को स्वीकारता है।

नीत्से ने कहा है कि मनुष्य दो किनारों के मध्य एक सेतु है। वह दो किनारों को जोड़ता है। मनुष्य एक तनाव है, यदि वह पशु हो जाये तो सुख का अनुभव कर सकता है, उसकी चेतना का अंत और यदि ईश्वर हो जाये तो आनंद उपलब्ध। जब तक वह मनुष्य है तब तक वह न सुख पा सकता है ना ही आनंद। बस सुख और आनंद के मध्य खिंचा रहता है।

अर्जुन मनुष्य का प्रतीक है और दुर्योधन पशु का और कृष्ण ईश्वर का–परमात्मा का। अर्जुन डांवाडोल है, वह निश्चिन्त हो सकता है यदि दुर्योधन बन जाये या फिर कृष्ण बन जाये। अर्जुन रहते कोई समाधान नहीं, अर्जुन की दुविधा है कि दुर्योधन वह बन नहीं सकता और कुष्ण होना समझ में नहीं आता। आज के मनुष्य की चेतना ठीक अर्जुन की चेतना के समान है। एक ओर मनुष्य अपनी चेतना को समाधि तक ले जाने को आतुर है, वहीं दूसरी ओर पशु प्रवृत्ति अपनी ओर आकर्षित करती है।

अर्जुन मनुष्य की चेतना है इसलिये अद्भुत है और गीता मनुष्य की आंतरिक मनःस्थिति का आधार, इसलिये अद्भुत है।

आज के युग को कृष्ण की आवश्यकता है। अहंकार पक चुका है, संकल्प प्रगाढ़ हुआ है। मनुष्य के हाथ में ऊर्जा है, वह एटॉमिक एनर्जी का स्वामी है और यह ऊर्जा उसे नरक तक ले जायेगी। यह ऊर्जा स्वर्ग जैसी सुंदर, पृथ्वी को 'हिराशिमा और नागासाकी' में बदल देगी। यदि शीघ्र ही इस ऊर्जा का रूपान्तरण नहीं हुआ और यह ऊर्जा संकल्प से हट कर समर्पण की तरफ न बही तो यह रेगिस्तान में खो जायेगी तथा इसके साथ आदमी भी खो जायेगा। एक महान अग्नि होगी, महा विस्फोट होगा, मनुष्य की प्रौढ़ता पकी है और कृष्ण के सन्देश की ऐसे क्षण जरूरत है।

''ओशो''

ऊर्जा तटस्थ है। हमारा संकल्प ही इसे अहंकार की दिशा देता है और हमारा संकल्प ही इसे समर्पण की ओर ले जाता है। ऊर्जा की अपनी कोई दिशा नहीं। जिस ओर तुम ले जाना चाहो ले जा सकते हो, ऊर्जा तुम्हारा अनुशरण करेगी। आज जो हमारी स्थिति बनी हुई है, हम बारूद के ढेर पर बैठे हैं, विनाश दृष्टिगोचर है, हम इसे नयी दृष्टि दे सकते हैं और स्थिति भिन्न हो सकती है, सुखमय, आनंदमय हो सकती है। यह युग बुद्धिजीवियों का है, संकल्प का है– संकल्प यानी अहंकार का, इसी अहंकार को परमार्थ–ईश्वर की ओर मोड़ना है, उसके चरणों में–कृष्ण के चरणों में झुकाना है, अर्पित करना है, समर्पण करना है अन्यथा एक महान विस्फोट होगा और मनुष्य उसी में खो जायेगा।

संदर्भ

1. गीता दर्शन भाग 1–8, ओशो
2. वरसानुपेक्खा प्रयेछादेशना, आचार्य 108 श्री विष्णुसागर जी